खुले हुए आसमान के नीचे

कीर्ति चौधरी

लोकभारती प्रकाशन
१५-ए, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद—१

अनुक्रम

•

■ ● ʟ

खुले हुए आसमान
के नीचे

• • •

खुले हुए आसमान
के नीचे

जैसे कौंध लपक जाती बिजली की रेखा
दिख जाता सब असपृक्त अविदित अनदेखा
तेरा ध्यान मुझे झकझोर चला जाता है
बढ़ा हुआ मेरा पग सहम लौट आता है
मुझे चाहिए नहीं अकेले गध राग रस
मुझे चाहिए नहीं अकेले प्रीति प्रेम यश

तेरा झुका हुआ मस्तक
जब तक ऊपर को नहीं उठेगा
तेरे भटके चरणों को जब तक
पथ इंगित नहीं मिलेगा
तब तक मुझको वर्जित होंगे
सुख वैभव के सारे साधन
तब तक मुझे लौटना होगा
बार बार यों ही निर्धन बन ।

एक सुनहली किरण उसे भी दे दो

एक सुनहली किरण उसे भी दे दो
भटक गया जो अँधियारे के वन में,
लेकिन जिसके मन में,
अभी शेष है चलने की अभिलाषा
एक सुनहली किरण उसे भी दे दो

मौन कर्म में निरत
बद्ध पिंजर में व्याकुल
भूल गया जो
दुख जतलाने वाली भाषा
उसको भी वाणी के कुछ क्षण दे दो

तुम जो सजा रहे हो
ऊँची फुनगी पर के ऊर्ध्वमुखी
नव पल्लव पर आभा की किरनें

तुम जो जगा रहे हो
दल के दल कमलों की आँखों के
सब सोये सपने

तुम जो बिसराते हो भूपर
राशि राशि सोना
पथ को उद्भासित करने

एक किरण से
उसका भी माथा आलोकित कर दो

एक स्वप्न
उसके भी सोये मन में
जागत कर दो ।

हर ओर जिधर देखो

हर ओर जिधर देखो
रोशनी दिखाई देती है
अनगिन रूपों रंगों वाली
मैं किसको अपना ध्रुव मानूँ
किससे अपना पथ पहचानूँ

अँधियारे में तो एक किरन काफी होती
मैं इस प्रकाश के पथ पर आकर भटक गया।

चलने वाले की यह कैसी मजबूरी है
पथ है — प्रकाश है
दूरी फिर भी दूरी है।

क्या उजियाला भी यों सबको भरमाता है?
क्या खुला हुआ पथ भी
सबको झुठलाता है?

मैंने तो माना था
लड़ना अँधियारे मे ही होता है
मैंने तो जाना था
पथ बस अवरोधो मे ही खोता है

यह मै अवाक् दिग्भ्रमित चकित सा
देख रहा ––
यह सुविधाओ साधनो,
सुखो की रल पल ।
यह भूल भुलैय्या
रगो रोशनियो का,
अद्भुत नया खेल ।

इसमे भी कोई ज्योति साथ ले जाएगी ?
क्या राह यहा पर आकर भी मिल जाएगी ?

मुझे फिर से लुभाया

खुले हुए आसमान के छोटे से टुकड़े ने,
मुझे फिर से लुभाया।
अरे! मेरे इस कातर भूले हुए मन को
मोहने,
कोई और नहीं आया।
उसी खुले आसमान के छोटे से टुकड़े ने मुझे
फिर से लुभाया।

दुख मेरा तब से कितना ही बड़ा हो
वह वज्र सा कठोर,
मेरी राह में अड़ा हो।
पर उसको बिसराने का,
सुखी हो जाने का,
साधन तो वैसा ही
छोटा सहज है।

वही चिड़ियों का गाना
कजरारे मेघों का
नभ से ले धरती तक धूम मचाना
पौधों का अकस्मात उग आना
सूरज का पूरब में चढ़ना औ
पच्छिम में ढल जाना
जो प्रतिक्षण सुलभ,
मुझे उसी ने लुभाया

मेरे कातर भूले हुए मन के हित
कोई और नहीं आया

दुख मेरा भले ही कठिन हो
पर सुख भी तो उतना ही सहज है

मुझे कम नहीं दिया है
देने वाले ने
कृतज्ञ हूँ
मुझे उसके विधान पर अचरज है।

सुख

धरती के आँचल में
हँसती हो या उदास
सुषमा तो बिखरी ही रहती है।

तट निर्जन
सूनी पगडंडी
या साँझ सघन
सभी कहीं व्याकुलता
होती ही होगी
जो मन का दुख और बढ़ा देती है।

उपवन में,
फूलों का नर्तन
या बहुरंगी
मेघों से भरा हुआ
मुक्त गगन

जादू कुछ करते ही होंगे
जो खुशियों की एक लहर मन को ढक लेती है

धरती के आँचल में
हँसने मुस्काने के
सुख के या दुख के क्षण
मोती से टँके हुए
मेरा तो छोटा घर
एक वही वन उपवन
तट निर्जन
मुक्त गगन
क्या जाने क्या क्या बन जाता है
जब भी यह पास तुझे पाता है
धरती का सारा सुख
सारा दुख
यहीं सिमट आता है।

अरे ये उल्लास के क्षण

अरे यों गर्दन झुकाओ मत
किसी कल्पित भार को
कंधे उठाओ मत

आँख मत मूँदो
धरा को जान कर सुनसान
यों चलो मत
सामने सब कठिन कड़ुवा और निर्मम मान

यह सुबह की रोशनी
यह वायु मनहर गंध भीनी
साँवरे गोरे गुलाबो
सजे सँवरे मेघ
नील नभ के बीच
सतरंग इन्द्रधनुषी रेख

वह प्रतीक्षातुरा मुग्धा
द्वार पर अपलक बिछाए नैन
झाँकते ऊपर झरोखे से
चपल नादान शिशु के
मृदुल अस्फुट बैन

अरे ये उल्लास ये सौंदर्य के क्षण
प्रेम पूरित स्नेह विगलित
ये सुहृद प्रियजन

कहीं भी हो
पास अपने या किसी के द्वार

कैसा दुख कैसा त्रास
मन के पास आए
कहाँ ऐसा भार जो
कंधे झुकाए

आँख तो खोलो
तनिक उस दुख से
इस खुशी को तोलो ।

दुखी नहीं हूँ

दुखी नहीं हूँ
यदि मेरे प्राणों में उपजी
नहीं बड़ी अभिलाषा
यदि मैंने अप्राप्य अदेखे
मूल्यवान की कभी नहीं की आशा।

यदि वसुधा को मैंने
माना नहीं एक परिवार
यदि कंधों पर ढो न सका
मैं हर पीड़ित का भार

दुखी नहीं हूँ—सोच
रह गया मैं
पिछड़ा स्वार्थों में लिपटा

मैंने अपने और तुम्हारे संबंधों को
कभी नहीं झुठलाया

अपनी सीमित सही परिधि मे
जो भी आए
परिजन प्रियजन
उन्हे नही बिसराया
तत्परता से लगा रहा
दैनिक जीवन के मामूली कामो मे
सदा झूठ मे डरा
दु ख को दैवी जाना
फल पाने की प्रत्याशा मे
अहित न सोचा वैर न माना

छोटी-मोटी जिम्मेदारी
साधारण से अनुभव लेकर
छोटे-मोटे सघर्षो मे जीते रह कर
सधा न कोई बडा काम
यदि मेरे हाथो
दुखी नही हूँ

मैंने निष्ठा से ही जीवन सदा बिताया
जो भी सधा
खुशी से सच्चाई के कधो उसे उठाया ।

कविताई काम नहीं आती

अब कविताई अपनी कुछ काम नहीं आती
मन की पीड़ा,
झर झर शब्दों में झरती थी
है याद मुझे
जब पंक्ति एक
हलचल अशांति सब हरती थी

यह क्या से क्या हो गया
कि मेरी रचना का चातुर्य वही
अभिव्यक्ति मगर अव्यक्त मूक ही रह जाती .
अब कविताई अपनी कुछ काम नही आती ।

मंथन आकुलता हर्ष द्वेष के भाव
कंठ तक आते हैं
उतरी केंचुल से शब्द व्यर्थ रह जाते हैं
कह कर जिसको यह भार घटे

वह पंक्ति नही अब मिल पाती
अब कविताई अपनी कुछ काम नही आती ।

है वही गगन मेघों वाला
धरती उल्लास लुटाती है
आते हैं अब भी आमंत्रण
गंधों के, वायु बुलाती है
कुछ मुझमे ही घट गया कहीं
कोई भी बात नही भाती
अब कविताई अपनी कुछ काम नही आती ।

खँडहर का पौधा

अपनी मुंडेर से जब भी झाँकती हूँ
सदा
खँडहर में उगा हुआ
गेंदे का पौधा वह
लहराता दिखता है

पीतवर्ण बड़े बड़े
मंजरियों जैसे बिखरे उन फूलों को देख देख
प्रश्न सदा उठता है

किसके हित ?
सूने में सोने के फूल वहाँ खिलते हैं
किसके हित ?
रंगों के निर्झर के स्रोत वहाँ झरते हैं
कौन वहाँ जाएगा ?
हँसती पखुरियों को देख मुस्कराएगा

रगो के निर्झर मे डूबे नहाएगा
सोने को अजिल मे भर भर लुटाएगा

कौन वहाँ जाएगा ?
कौन वहाँ जाएगा ?

मन मे दुहराती हूँ
जान नही पाती हूँ

मैंने भी लगाए हैं
सुदर स्वरूप वाले पात्रो मे विदेशी फूल
लोग जहाँ आते हैं
रगो के मधुवन को देख देख
मुग्ध रह जाते हैं
नयनो से वाणी से
प्रशसा का भाव जतलाते हैं

लेकिन जो प्रशसा की अपेक्षा किए बिना
मुक्त हस्त देता
वहाँ सूने मे खडा है
वह निश्चय ही बडा है
मुझसी सकुचित वृत्ति उसकी नही है
शायद वह ज्यादा सही है
अनागत की प्रतीक्षा मे

विगत

यही तो था
जिसे चाहा था
सदा दूसरों के पास देख
मन में सराहा था
'अरे हमारे पास भी यदि होता
तो यह जीवन क्या सँकरी गलियों में
वे हिसाब खोता ?'
हम भी चलते
उस प्रशस्त राज पथ पर
बढ़ने वालों के कदमों से कदम मिला
बोझे को फूल-सा समझते
हम भी चलते
गर्व से सर ऊँचा किए ।'

पर जो बीत गए हैं कठिन अभावों के क्षण
कहीं वहीं तो नहीं रह गया
वह सरल महत्वाकांक्षी मन

आह ! उसके बिना तो सब अधूरा है
वह हर सपना
जो हुआ पूरा है !

सूरज है या...

झुकती आती है साँझ
दूर पेड़ों की फुनगी
दीवारों कंगूरों पर से बहता
पिघले सीसे सा यह अंधकार
नस नस में जमता ही जाता
पग बोझिल हैं
धुँधली धुँधली होती जाती है दृष्टि
यही क्या अथ है ?

थक कर बैठूँ अब
आगे बढ़ने की आशा छोड़ूँ
तोड़ूँ
अपने ही हाथों से
आकांक्षा की स्वर्णिम मूरत तोड़ूँ
तोड़ूँ...तोड़ूँ...
प्रतिध्वनि मुझसे टकराती है

निस्तब्ध दिशाएँ मौन
कौन बोले
तम का दुर्भेद्य आवरण
आगे बढ खोले
उस पार लहकता सूरज है
या ठडी सख्त राह रोके
दीवार
और यह अधकार
पिघले सीसे सा
प्राणो मे जो भरता है ।

किंतु मैं उदास औ अकेला रह जाता हूँ

हाथ पकड़ मुझको ले जाता है
धूप का मुलायम औ गर्म हाथ
दूर दूर फैले मैदानों में

मुझमें अनुभूति के असंख्य द्वार खुलते हैं

नदियों, पहाड़ों औ झीलों औ कुंजों की
यात्रा करती हुई
हवा गुनगुनाती है होंठ लगा कानों से

मुझमें संगीत के अजस्र स्रोत झरते हैं

किंतु मैं उदास औ अकेला रह जाता हूँ
रात के अँधेरे में
सारी की सारी ही विभूतियाँ चली जातीं
दिन के संग

फिर वे ही प्रश्न मुझे आकुल करने लगते
फिर वे ही चिर परिचित संशय
मुझमें जगते
फिर सब पर अविश्वास
फिर मन को घोर त्रास
दिन के सँजोए सपने फिर से ढहते
फिर मेरी मजबूरी
फिर तीखे उपहासों की ढेरी

फिर मेरे प्राण वहीं पिंजड़े में फड़फड़ करते रहते

दिन का कमाया सब रात गवाँ आता हूँ
और मैं उदास औ अकेला रह जाता हूँ
रात के अँधेरे में।

स्मृतियाँ दुहराऊँगा

फेंका था हँसी ही हँसी में
एक बीज वहाँ
जिसने मिट्टी की पर्त फोड़
सर ऊँचा कर
कोपलों सरीखी सुकुमार नन्ही आँखें खोल
मुझको पुकारा--

लो उगा हूँ
नीचे का गहरा अंधकार भेद
बाहर उजाले में जगा हूँ
आओ, यहाँ आओ तो !

चौक कर चकित दृष्टि मैंने उठाई
फेंका था हँसी ही हँसी में एक बीज
अरे वह जम कर पौधा बन जाएगा
और यों आँखें खोल

नन्हे नन्हे हाथों
मुझको बुलाएगा।

अचरज से खुशी से मैंने उसका दुलार किया
फिर तो हर सुबह शाम
मुझे एक वही काम
पौधा लहराया जैसे मेरी इच्छाएँ हों
कोंपल पर कोंपल फूटती ही चली गई
रच रच कर मैंने हर पत्ती पर कथाएँ लिखीं
प्रेम की, व्यथा की, परिश्रम की, हार की

इतनी अनुभूतियाँ समेटे सलज्ज स्निग्ध
हरे हरे पत्तों का प्रियदर्शन पौधा
यह मेरा है
इतना ही घेरा है
मेरे कृतित्व का

बीतेगा समय फैला अपनी बाहें विशाल
आएँ जाएँगी ऋतुएँ
सर्दी गर्मी आँधी पानी सब झेलझाल

प्यार की कथाएँ मैं कब तक सुनाऊँगा
अपनी व्यथा भला कब तक दिखाऊँगा
चुप हो जाऊँगा

पर मेरा प्रियदर्शन पौधा रहेगा
घनी घनी डालें झुक छाँह मुझे देंगी
वही ओढ़ूँ बिछाऊँगा
स्मृतियाँ दुहराऊँगा !

तुमसे नेह लगाया

क्या पाया
तुझसे भी नेह लगाया
सुख दुख सब कह डाला
मन मे कोई भेद न पाला
क्या पाया पर
खड़ा रह गया हाथ पसारे
झूठे होकर मन्द पड़े
वे उज्ज्वल तारे प्रेम प्रीति के

आह ! देह का धर्म अकेला मैं ही झेलूँ ?

यह कैसी दूरी
कैसी मेरी मजबूरी
देख रहा हूँ
छू सकता हूँ

आँखों ही आँखो से तुझको पी सकता हूँ
सुख पाता हूँ

उठा हाथ से दुख क्यों तुझको बाँट न पाया
मुझे नियति ने क्यों इतना असहाय बनाया
क्या पाया यदि मैंने तुझसे नेह लगाया

तू भी किसी डाल पर होता खिले फूल सा
तू भी सहला जाता माथा
गंध बसे मलयानिल के चंचल दुकूल सा

क्यों मैंने तुझसे प्रत्याशा ही की होती

सँग सँग कितने दिवस बिताए
सुख दुख के अनगिनती चित्र बनाए रँग रँग
आह ! दुःख की एक मार ने
सब बिसराया
क्या पाया यदि मैंने तुझसे नेह लगाया !

अजब ढग

कुछ अजब ढग इस मन के होते जाते हैं

बेतरतीबी के काम इमे अब भाते है
अक्सर रातो रातो सोते सोते जग कर
रेतीले तट पर घूम घूम कर थक थक कर
सूनी गलियो का अँधियारा झकझोर झोर
चिल्लाता अजब अजनबी स्वर मे जोर जोर

तोडूँगा तोडूँगा
घेरा प्राचीरो का
मेरी राहो मे रोडे जो अटकाएँगे
फोडूँगा शीश स्वय उन अत्याचारो का
मुझको चौराहो पर रोकोगे पकडोगे
गलियो मे कूचो मे विद्रोह जगाऊँगा

यों हँसता है मुस्काता है
इस उस सबसे बतलाता है
दिन उगने से संझा ढलने तक के
हर छोटे बड़े काम निपटाता है

पर कभी कहीं एकांत जरा सा पाता है
बस यों ही हरदम चीख-चीख चिल्लाता है।

हाथ बढाता हूँ

हाथ बढाता हूँ हाथो मे नही समाता
कल तक था जिससे मेरे प्राणो का नाता
लतरो फूलो झरनो के कलरव का मेला
भोर सुहानी वह सध्या की स्वर्णिम वेला

कहाँ गया मेरे वैभव का ताना बाना ?
भूल गई कोकिल क्या इस मधुऋतु में गाना ?

यहाँ वहाँ तो किरणे केवल जलने आती
बूदें आती बस धरती गीली कर जाती
आह ! पवन अब बिना सँदेशे आता जाता
मदिर गध मतवाला प्रेमी नही लुटाता

अब न सुनूँगा क्या चिडियो की मधुर प्रभाती ?
अब न चलेगी कोई पगडडी सगाती ?

इन चौड़ी सड़कों पर डर डर चलना होगा
झूठे वैभव से ही मन को छलना होगा

अब न कभी खिड़की दरवाजों से झाँकेगी
धूप सुनहली, खुली कलम पर सब आँकेगी
कभी नहीं उज्ज्वल भावों की जगमग रेखा
क्या अतीत की कथा बनेगा आँखों देखा

वह उल्लास, हास उन्मुक्त लालसा मन की
वह सिहरन थिरकन आतुरता कंपित मन की

शांत मंद जीवन की गतिमय सर्पिल धारा
बीत गया ढलते दिन सँग कोलाहल सारा
इस चुप्पी से क्या कोई आवाज उठेगी ?
वाणी मेरी ज्योतिमाल फिर से पहनेगी ?

पीले पत्ते   हँसते गुच्छे

पैरो के नीचे पतझर के पीले पत्ते
हाथो मे ताजे फूलो के हँसते गुच्छे
मैं देख रहा—
धीरे धीरे सब बीत गया
मेघावलियाँ वातास   गध
कुसुमित कानन का कल कूजन
वे अन्तहीन धूसर उजाड़
हू हू करता पागल समीर
धरती का वह नीरव चिंतन

धीरे धीरे सब बीत गया
मैं देख रहा पीछे पीछे
जिस ज्वाला से जल उठता है
वन का अतस
मेरे नयनो मे भी जागी थी वही आग

छूने को चाँद उमड़तीं ज्यों ऊँचे लहरें
मेरे अंतर में भी उमड़ी थी वही साध

मुझको मेरी आकांक्षा ने भरमाया था
वन प्रांत नदी नद मेघ खंड के पार
चकित दौड़ाया था

क्या पाया मैंने क्या पाया ?
माथे पर केवल रेखाएं
दे आया मैं पथ को
अपनी सारी संचित अभिलाषाएँ
फिर वहीं आ गया दौड़ धूप
लेकर अनुभव झूठे सच्चे

पैरों के नीचे पतझर के पीले पत्ते
हाथों में ताजे फूलों के हँसते गुच्छे !

धरती की रोशनियाँ

वे तो बुझती ही हैं
कई कई रगो वाली
धरती की रोशनियां
वे भी बुझ जाते हैं नभ के अगारे
जो कहलाते पथ दर्शक
हर भूले भटके को रास्ता दिखाते हैं
वे भी बुझ जाते हैं
जब बढता है अधकार
हहराती नदिया सा

बहते ही जाते हैं
कुज घने लतिकाएं द्रुम पल्लव
बडी बडी दीवारे घर आँगन
चिर परिचित मुखडो के आश्वासन मनुहारें

घोर अधकार की समेट ले जाती है
बरसो का साथ मददगार हाथ

ऐसी कुबेला में छोड़ कर अकेला
आह ! वे तो बुझती ही हैं
कई कई रंगों वाली धरती की रोशनियाँ
वे भी बुझ जाते हैं
नभ के अंगारे जो कहलाते पथ दर्शक
जलती है तो केवल ज्योति वही अंदर की
झिलमिल झिलमिल
जिसे भूल जाता हूँ बाहरी उजाले में
फिर फिर उकसाता हूँ
मन के इस निपट निराले में

आह ! जलती तो केवल वही है
बाकी सब अभिनय है
मिथ्या है ।

जब मन का भाव बताया था

अस्फुट स्वर में जब मन का भाव बताया था
तुमने हँस कर ऐसे उसको अपनाया था

मेरा कहने का चाव बढ़ा
नित नए ढंग से अपनी अभिलाषा का
मैंने रूप गढ़ा

जैसे कोयल मीठे स्वर का वर पा जाए
वह कोयल बनने के खातिर
जीवन भर गाती ही जाए।

मेरी वाणी के दुग मुख तुमने अपनाए
मैं आऊँगा
तुम तक अपने को पहुँचाने
जीवन भर
यों ही विह्वल स्वर में गाऊँगा

सब कहते हैं मैं अपने को दुहराता हूँ
मैं कहता हूँ मैं कहाँ प्रेरणा पाता हूँ
मेरे शब्दों की सारी सज्जा झूठी है
मेरे भावों की मंजूषा ही रीती है
यह दर्द हँसी यह अचरज यह उल्लास
कहाँ मैं सहता हूँ

मैं तो रहता हूँ
केवल उस स्मृति के बल पर

अस्फुट स्वर में जब मन का भाव बताया था
तुमने हँस कर जैसे उसको अपनाया था
तबसे फीके पड़ गए
रूप आकार गंध सुख स्वाद सभी
झूठे हो गए भाव—अनुभव के स्रोत
प्रेरणा मार्ग सभी

कुछ कहता हूँ
मेरे शब्दों का एक अर्थ
कह कर ही तुमको पाता हूँ
कुछ पाता हूँ

मेरे भावों का एक जगत
तुमसे अपनाया जाता हूँ

मैं इसीलिए तो गाता हूँ।

और कब तक ?

और कब तक किनारे पर बैठ कर लहरें गिनोगे ?
और कब तक
फूल पत्ती हवा से बातें करोगे ?
और कब तक लिए होठों पर तरल मुसकान
आकुल कंठ से गाते रहोगे
यों सजीला गान ?
और कब तक पंथ से आखें फिराए ही रहोगे ?

अरे यह तो रास्ता है
आज या कल या कि परसों
इसी से तो वास्ता है

झपटता विक्षुब्ध जल हर ओर से
यह कुलबुलाती जिंदगी घेरे हुए
विस्तार अगम अथाह
इसमें डूबना है

छूटते हैं छूट जाने दो किनारे गान
खुशियों के सुखद आह्वान
पत्ती फूल से सबंध
जीवन आह ! वह निर्बंध
छूटता है छूट जाने दो किनारे
गीत यदि होंगे हमारे फिर मिलेंगे
उसी बेबस जिंदगी के बीच
वे नीले कमल से फिर खिलेंगे
सांस घुटती
बांह थकती के सहारे
गीत यदि होंगे हमारे
फिर मिलेंगे ।

छूटा जाता है

छूटा जाता है
हाथों से सारा वैभव
मैं देख रहा हूँ
विस्मित आँखें फैलाए

बचपन से लेकर अब तक
जिसे संजोया था
जिसको हाथों में पकड़
हँसा था रोया था

वह गुनगुन करती हवा
धूप के चमकीले धागे
खुशियाली पौधों की
जगमग हीरे के टुकड़ों सी
आँखें उन सोती कलियों की

बौछार गध की
खुली खिडकियो से आकर
तर कर जाती
जो कुछ भी पाती

थके पख की आहट
भोली चिडियो की
जो काट काट चक्कर
नीले नभ के
विस्मित रोशनदानो से अदर आती
घबराती

सुनसान ऊघते पेडो की
गुपचुप बातें
टपके फल पर
कितनी नजरो कितने हाथो की
वे घातें

वे स्मृतियाँ सारी की सारी
छूटी जाती हैं हाथो से धीरे धीरे
इन लम्बी चौडी सडको के हर फेरे मे
अजनबी भीड के घेरे मे

तेज हवा के झोंके आते है

तेज हवा के झोंके आते हैं
खर खर कर पीले पत्ते झर जाते हैं
यहाँ कलम पकडे बैठा हूँ
क्या यह अच्छा नही
कि जा पत्तियाँ बटोरूँ ?

भाव अरे वे तो आते है
और चले जाते हैं
पर धरती उर्वर है
कब रहता बेकाम
उसी पर जो निर्भर है

लदे खडे बन बाग
कही पर विरल टहनियाँ
झरते पीले पात
कही पर हँसती कलियाँ

अजाना सपना

घर के आग मेरे
छोटा सा उपवन है

दुबली पतली लतर चमेली की फैली है
दरवाजे पर
गृहणी रोज देखती
अब तक फूल न आए

चिकनी काली हरी पत्तियाँ रोज निकलती
चाँद सरीखे पौधे
बढ़ते ही जाते हैं

पिछवाड़े किशोर कदली
कुछ गर्व भरा सा
दिन पर दिन
बाहें अपनी फैलाता जाता

एक दूसरे में उलझी
गुपचुप बतियाती
बेलें
राह बनाती
ऊँचे लपकी जाती

बहुत दिनों के बाद
कली आई गुलाब में
घर भर दौड़ा
खिला फूल बगिया में पहला

फिर तो हँसमुख गेंदा फूला
फूलों से झुक गई चमेली
लाल बैंगनी नीले पीले फूल
क्यारियों में लहराए

दीर्घ प्रतीक्षा
आखिर यों फूलों में फूली

ये छोटे छोटे सुख
छोटी सी चिंताएँ
क्यों मैं इनमें समय गँवाती

मुँह मोड़े देखा करती हूँ
सूनी आँखों से
सुदूर अस्पष्ट क्षितिज में
सुख का एक अजाना सपना।

आगे बढ़ा आता हूँ

एक तीखी अशांति से जला जाता हूँ
आह ! कैसी बेचैनी है
रुकने नहीं देती
थकने भी नहीं देती
बढ़ता ही जाता हूँ

आखिर क्या पाऊँगा ?

साथी नहीं कोई
खिंचे चले आए थे
स्वर की मधुरिमा से
वे धीरे धीरे धीरे
छोड़ गए
पर मैं कहाँ जाऊँ ?

मैंने तो लगा दी सब पूंजी यहीं
चाह दाह आशा उल्लास

और था ही क्या !
उसी स्वर पर निछावर किया

जा था तुम्हारा
जो तुम तक आ पाने का
एक था सहारा
वह मृदु आकाशी नम्र कोमल स्वर
वह भी तो घिस कर
बदरंग और तीखा होता जाता

पर मैं करूँ तो क्या ?
छोड़ कर कहाँ जाऊँ
गाए हैं तुम्हारे लिए
सहज सुरीले गीत
अब रूखे स्वर से किसके आगे गाऊँ ?

क्या जाने पाना या खोना है
मेरा क्या होना है
मैं तो हर पंक्ति जोड़
आगे बढ़ा आता हूँ

लेकिन कहाँ पाता हूँ
केवल उसी तीखी अशांति से जला जाता हूँ ।

याद तुम्हारी

पहले आती थी
गोपन एकांत कक्ष में
अब आती है
राह घाट पर
समय बेसमय !

हरे गमकित पत्तों वाले पेड़ों को देखूं
देखूं पंख मार उड़ जाती विहग पांत को

भीगूं पल भर
पानी की फुहार के नीचे

छू जाए नभ गंध भरा
हलका सा झोंका।

अकुलाहट वैसी ही मन में भर जाती है
मैंने याद संजोयी है, या बिसरायी है ?

मैं भी तो खिलता हूँ

मैं भी तो खिलता हूँ
पत्र हीन रूखी बेडौल इन टहनियों मे
लाल लाल ।

तुमको क्या होता है ?
ऐसे मुरझाए हो खिलने के मौसम मे ।

मुझको भी अवसर झकझोर चले जाते हैं
धूल भरे रूखे झकोरे हवा के
प्रतिकूल दिशा से आकर
फिर भी मैं हसता हूँ

मेरा तो नाता है अन्दर का
खिच कर जो आता है
मुझ तक वह जीवन रस
उसका तो गहरे   और गहरे कहीं मूल है

कतार के कतार मकान

एक ही तरह के वही
दो कमरे वाले मकान
यहाँ से वहाँ तक देख
बडा अजीब लगता है
मन मे जाने कैसी ऊब का भाव जगता है
कि यह भी कोई बात है
एक से दरवाजे   एक सी खिडकियाँ
कोई पहचान नही

हाँ वही पीले रग से पुता
दो मजिला   वही तो मकान है
देने को यहाँ पर
कोई ऐसा प्रमाण नही ।

अजीब है यह बडे शहरो की जिंदगी
कि कोई भी स्मृति लगाव
मन मे कुछ नही उपजता है

उन्हें अपने घर का ज्ञान है

अंधेरा हो, उजाला हो
वे राह बगैर भूले
अपने अपने घरो को लौट आते हैं
मैंने तो कभी नही देखा
कि वे धोखे मे भी
दूसरो के घर चले जाते हैं

अजब बात है
कोई रोशनी है या कोई आवाज है ?
जो इस भीडभाड मे भी
उन्हे अपना हाथ थमाती है
कि हर चीज कितनी ही
क्यो न बदल गई हो
मगर इस दौड धूप और शोरोगुल के बीच भी
आदमी के अदर कुछ है
जो नही बदलता
और जैसे रास्ता ढूंढ लेता है
बहता हुआ पानी
या उगने वाला बीज
हर जगह
अंकुए मे सर उठाता है अभिमानी

तृष्णा

मैं कमरे मे हूँ तो जैसे
दरवाजो से हल्के फुल्के पर्दे
खिडकी के ये उढके पल्ले
दीवारो के छोटे घेरे
लगता है सब प्राचीरें हैं
जो मुझ बेचारे बढने वाले को
बरबस ही घेरे हैं

यह सोच सोच
मन जाने कितना अकुलाता
भर भर आता
इतनी सीमाएँ ये बधन
ये सिर्फ अकेले मेरे हैं ?

मैं जो बढने का आकाक्षी
कर्मठ बनने को आतुर हूँ

मुझको भी राह मिले
मैं भी कुछ काम करूँ
यह क्या तटस्थ रेखा सा यहाँ अनाम रहूँ

कुछ इसी तरह की बातें
मुझको उद्वेलित करतीं रहतीं
कुछ अजब तरह का असंतोष विद्रोह
सदा मन में भरतीं
फिर ऐसा भी होता है
जब मैं तोड़ फोड़ कर दीवारें
पर्दों खिड़की दरवाजों के जैसे बंधन
बाहर आता हूँ
उत्फुल्ल मुग्ध विस्मृत मन से
उस जनरव में खो जाता हूँ

पर मेरे मन की तृष्णा तो
हरदम ही मुझको भटकाती
मैं कहीं अकेले रहूँ
भीड़ में धसूँ
सदा छलती जाती

अब मैं बाहर हूँ तो जैसे
मेरा कोई अस्तित्व नहीं

यह भीड विलग मुझको करती
कुछ क्षण मुझ सग हँस बोल
सदा आगे बढती

मैं फिर वैसा ही निरुद्देश्य
मैं फिर वैसा ही आकुल हूँ
बाहर आया था
एक अतृप्ति लिए मन मे
ज्यो का त्यो
वापस जाने को फिर व्याकुल हूँ।

प्रश्न

बस इसीलिए थी इतनी चीख़ पुकार ?
बस इसीलिए लगता था जीवन भार ?

वह तुम थे ?
अंगारों पर चलते देखा था
लोहे सा तप कर,
दिन दिन ढलते देखा था !
वह तुम थे ?
भीड़ों में पहचाने जाते थे !
अन्याय मेटने को आवाज उठाते थे ?

सब झूठ पड़ा
अपना ही देखा सुना कहा
बालू सा
मुट्ठी से झर कर कुछ भी न रहा

मन की ज्वाला
पानी से बुझ जाया करती ?
ज्योतिर्मय नयनो को आखिर
कालिख ढकती ?
छूटा करता उच्चाकाक्षा का साथ सदा
गिर जाया करते
लडने वाले हाथ सदा
कब तक यो ही
प्रारभ ज्वार सा मतवाला
कब तक यो ही
यह अत फेन बुदबुद वाला ।

आकांक्षा

वृक्षों को फूल दिए
नदियों को पानी
बादल को रंग
हवा करती मनमानी
मुझको ही केवल आकांक्षा आकांक्षा

हाथ तो बढ़ाऊँ
और कुछ भी न पाऊँ
बढ़ूँ सभी ओर..
वहीं लौट लौट आऊँ

गंध भी उन्हीं की
रंग भी उन्हीं के
थकन वहीं हरती है
तृप्ति वहीं मिलती

मैं भी यदि पा जाता
हृदय जगमगाता
पल पल दिखलाता
पथ
प्यार बन उजाला बन

आता यदि भरे हाथ
क्या नहीं लुटाता
धूप हँसी गीत गुच्छ
सब पर बरसाता

देने को किन्तु मुझे
क्या मिला यहाँ पर
अकुलाहट स्पर्धा से
घिरी एक आकांक्षा

उच्चारित उसे करूँ
फिर फिर दुहराऊँ
सुख वैभव के जग में
तृष्णा उपजाऊँ

मेरे ही कंधों पर यह रखा बोझा ?

छँट रहा कुहासा

छँट रहा कुहासा
आगे से धीरे धीरे
ध्वनियाँ ऊँची नीची
सब पीछे छूट गयीं

...वह भीड़भाड़ वह शोर शराबा
खत्म हुआ
अब दिखते हैं
इक्के दुक्के चलने वाले

जाने किस रौ में
अब तक बहता आया था
आगे की राह अकेली दुस्तर दिखती है

है एक अजब चुप्पी सी
यह यात्रा का पूर्वाभास......

समय ज्यों ठहर गया हो
अंबर में पृथ्वी पर पथ में, नीडों में ।

दल के दल थे वे
उनमें से वह एक अकेला
मेघखण्ड ही किधर चला ?
कलरव को पीछे छोड़
डाल पर बैठा एकाकी पछी
अपने पंखों को तौल रहा

मैं किसके लिए प्रतीक्षा करता ठहरा हूँ ?
किन आवाज़ों के पीछे मुझको जाना है

आवाज़ कहाँ से आएगी
सुनसान क्षितिज पर काँपेगा आलोक
और पथ में कोई ज्योतिरेखा खिंच जाएगी
या अंतस्तल में
गूंजेगी रागिनी अमिट
सूनी घाटी यह गीतों से भर जाएगी ?

कुहकती कोयल

कुहकती कोयल
सघन अमराइयों में
डूब जाते स्वर
दिशाएँ बेखबर सी ऊँघती हैं।

कली खिल कर बिखरती
पर गंध का तो मोल होता ही नहीं
हवा लम्बे डग बढ़ाए चली जाती है

जूझने को अकेले
झंझा झकोरों से
उमग डैने फुलाए
उड़ा जाता पखेरू
पर दृश्य उसके सामने
स्वागत प्रशंसा स्नेह के सजते नहीं हैं

हाय यह कैसी फिजा है
अनसुना ही जा रहा है
यह सहज संगीत
अनदिखे ही खुल रहे हैं
दृश्य अंदर दृश्य

किन्तु कब तक
शून्य में बिखरा रहेगा
यह विपुल व्यापार
चाहिए आधार सबको चाहिए आधार

कहीं ऐसा न हो
स्वर सुनसान में खो जाएँ
सहज भावाकुल अनूठे भाव
सब सो जाए
जो जगें वे बेसुरे हों
और खींचें ध्यान
और उनको मान बैठें
हम प्रगति अभियान
खो न जाए यों
सचाई की कहीं पहचान।

घिरती होगी

घिरती होगी अब भी
वैसी ही मायाविनि रात
काली रहस्यपूर्ण चादर से
ढक जाता होगा वन प्रांतर
अंधकार में महमह करते बेर शरीफे पकते होंगे
नींबू के फूलों की खुशबू
दूर दूर तक फैल
कहीं खो जाती होगी
अधरों ही अधरों में हँसता
पारिजात खिल पड़ता होगा

और उसी निस्तब्ध रात्रि में
किसी शाख पर बैठी कोई
नन्हीं चिड़िया
तीव्र मधुर स्वर में सहसा
सन्नाटा चीर बोलती होगी

किंतु व्यर्थ हो जाता होगा
अँधियारे का यह अद्भुत साम्राज्य
चकित उन दो नयनों के बिना
जिनकी अपलक दृष्टि जगा देती थी
सबमें प्राण
और हो जाता था साकार
अजाना लोक दूसरा ही
नीरव निस्पंद धरा पर
आलोड़ित हो उठती थीं
आलोक लहरियाँ
जिनमें सपने
प्रतिक्षण प्रतिबिम्बित होते थे।

ऐसा क्यों होता है

ऐसा क्यों होता है ?
ऐसा क्यों होता है ?

उमर बीत जाती है करते खोज
मीत मन का मिलता ही नहीं
एक परस के बिना हृदय का कुसुम
पार कर कितनी ऋतुएँ
खिलता नहीं

उलझा जीवन सुलझाने के लिए
अनेकों गाँठें खुलतीं
वह कसती ही जाती
जिसमें छोर फँसे हैं

ऊपर से हँसने वाला मन अन्दर ही अन्दर रोता है
ऐसा क्यों होता है ?
ऐसा क्यों होता है ?

छोटी सी आकांक्षा मन में ही रह जाती
बड़े बड़े सपने पूरे हो जाते सहसा
अन्दर तक का भेद
सहज पा जाने वाली दृष्टि
देख न पाती
जीवन की संचित अभिलाषा

साथ जोड़ता कितने मन पर
एकाकीपन बढ़ता जाता
बाट न पाता
कोई ऐसे सूनेपन को
हो कितना ही गहरा नाता

भरी पूरी दुनिया में भी मन खुद अपना बोझा ढोता है।
ऐसा क्यों होता है ?
ऐसा क्यों होता है ?

कब तक यह अनहोनी घटती ही जाएगी
कब हाथों को हाथ मिलेगा
सुदृढ प्रेममय
कब नयनों की भाषा
नयन समझ पाएँगे
कब सच्चाई का पथ
काँटों भरा न होगा

क्यों पाने की अभिलाषा में
मन हरदम ही कुछ खोता है
ऐसा क्यों होता है ?
ऐसा क्यों होता है ?

खुले हुए आसमान के नीचे

खुले हुए आसमान के नीचे
धूल और मिट्टी के बीच
खेल रही है मेरी बच्ची
अकेली और निर्द्वन्द

लाल नीले पीले फूलो को तोडती
सूखे पत्तो को बटोरती
चुन रही है कूडे मे से सुडौल नन्हे ककर
अक्सर बडी नायाब चीजे ।

उसे मालूम ही नही है
खूबसूरत फूलो के बीच छिपा
विषैला कीडा भी वही है
मौका पाते ही जो डक मार देगा
तेज धार वाला नुकीला पत्थर
या कॉच का टुकडा

अचानक पावों में चुभेगा
उसे कोई डर ही नहीं है

हर नये और अजनबी से पहचान करती है
बेझिझक
दोस्ती का हाथ हर ओर बढ़ा देती है
निश्चित और बेपरवाह
ऐसी बेपरवाही किसे मयस्सर है

उसके दिल में न छल है न कपट
भोलेपन और मुहब्बत का झरना
झर रहा है
उछली पड़ती हैं बूंदें
आँखों से और होठों से
दाँतों की दूधिया हँसी से

दूर......दूर ही रहना
ओ काली छायाओ
अपने काले डैने फैला
न आना इस ओर
छिप जाएगी रोशनी
छिप जाएगा खुला आकाश
हवा दम तोड़ देगी

घुटने लगेगी फूलों की साँस
अधकार में खो जाएगा
जीवन का सारा उल्लास

न आना इस ओर
यहाँ खेल रही है मेरी बच्ची
अकेली और निर्द्वन्द्व

उसे क्या दिया है मैंने
रूखा सूखा खाती है घर का
मोटा पहन ओढ कर भी खुश है
प्यार करती है अपनी धरती से
स्वतत्र आकाश के नीचे
विचरती है मुक्त भाव सी
उसे जान कर अकेली
न आना इस ओर

टूटे नहीं हैं प्यार के रिश्ते
इस घर मे अभी
भूल जाएगी कविताई मुझे
विसर जाएँगे सहज स्वर
एक उसकी पुकार पर
ठहर जाएगा समय पल भर को

चकित हो
देखने लगेगीं दिशाएँ
सर उठा,
शांत मौन धरती पर धधक उठेगा
ज्वालामुखी

शांत सुखी घर को जलाने
न आना इस ओर
ओ काली छायाओ
अपने काले डैने फैला
न आना इस ओर ।

दीपावली का गीत

अधकार मकट की घडियो सा
बढता आता था
नभ मे चाँद नही था

मैने सोचा
मावस की यह काली रजनी
फिर क्यो आई
आँख मिचौनी छोड
क्यो नही स्थिर हो जाता चाँद
गगन मे

बरसाता क्यो नही
ज्योति की ऐसी किरणें
काली जहरीली छायाएँ
पास न आएँ

किंतु न चमका चाँद गगन में
एक लरजती दीपशिखा
मैंने ही बाली
खुद को महज दिलासा देने
पल भर में सज गईं कतारें
घर आँगन
छज्जों दीवारों और मुंडेरों पर
दीपक जल उठे

ज्योति के झरने जैसे फूट पड़े
अनगिन रूपों में

मैंने देखा --
शिशुओं के अनगढ़ उल्लास भरे हाथों ने
दीपक बाले
राह घाट में
गलियारों कोनों अंतरों में

धीर पगों से वधुओं ने कर दिए
प्रकाशित
तुलसी चौरे द्वार देहरी
ऊँचे सतखंडे महलों में
बली बाहुओं ने
दृढ़ता से जोत जगाई

झुर्री भरे कांपते हाथो ने
दीपो की जोत जगाई

मैंने देखा —
लहरो पर दीपक तिर आए
प्रिय का पथ उजागर करने
नभ मे, राह दिखाने को
आकाश दीप लहराए

घर आँगन जल थल नभ मे
हर ओर ज्योति थी
दावानल सी बढती ही जाती
पल प्रतिपल
नही ज्योति का पर्व
अधूरा नही रहा था
अंधकार की चोट बडी थी
उसे सहा था
सबने मिल कर
लहक उठी थी ज्योति जागरण की
घर बाहर
मन के अन्दर

वे कैसे दिन थे

वे कैसे दिन थे
जब चीजें भागती थीं
और हम स्थिर थे

जैसे ट्रेन के एक डिब्बे में बन्द झाँकते हुए
ओझल होते थे दृश्य
पल के पल में—

...कौन थी यह तार पर बैठी हुई
बुलबुल गौरय्या या नीलकंठ ?

आसमान को छूता हुआ
सघन का जोड़ा था ?

दूरी पर झिलमिल झिलमिल करती
नदिया थी ?
या रेती का भ्रम ?

कभी कम कभी ज्यादा
प्रश्न ही प्रश्न उठते थे
हम विमूढ ठगे से
सुलझाते ही रहते
और चीजें हो जाती थीं ओझल

वे कैसे दिन थे
जो रहे नही ।
सीख ली हमने चाल समय की
भागने लगे सरपट
बदल गए सारे दृश्य

शाखो पर दुबकी भूरी चिडियों ने
कुतूहल से देखा हमें
हवा ने बढाई बांह
रसभीनी गंधमयी

लेकिन हम रुके नही
हमने सुनी ही नही
झरनो की कलकल
ताड पत्रो की बाँसुरी

पोखर मे खिले रहे दल के दल कमल
और मुरझाए से हम

आगे और आगे
भागते ही रहे
छोड़ते चले ही गए
जो कुछ पा सकते थे

हाथ रही केवल
यही अन्तहीन
और छूटते दिनों के संग
पीछे सब छूट गया ।

अदृश्य

तब भी अप्राप्य था
तब भी अधूरा था
कभी कभी केवल दिख जाता था
फूलो भरी टहनी मे
पानी पर कांपती किरन मे
या बनते बिगड़ते नभ चित्रो मे

क्या था वह सपने जगाता था
मन को अकुलाता था रह रह कर
आगे ले जाता था

अब भी अप्राप्य है
अब भी अधूरा है
आज वह अदृश्य है
पहले दिख जाता था

सूनी पगडंडी पर आगे बढ़ जाता हूँ

फिर वे ही सूनी आँखें
वे थके हुए मन पंछी की पाँखें
खाली अंजलियाँ बस शेष रहीं

खाली अंजलियाँ : जो मुक्ताएँ भरने को आतुर थीं

मन पंछी : आशा आकांक्षा की फुनगी
पा लेने को व्याकुल

वे आँखें : जो सपनों विश्वासों की झीलों में
नील कमल जैसी मुस्काती थीं

सब लौटे अपने उस निर्जन निस्तब्ध सदन
खोज खोज नन्दन बन
ज्यों के त्यों

फिर भी क्या दुखी और टूटा हूँ
जीवन से किंचित भी रूठा हूँ ?
नही . नही
सिर्फ मैं थका हूँ

थकन यह हटेगी
और प्राणो मे मेरे कृतज्ञता जगेगी
मैंने यदि झेली है
सुख की लालसा
और पाने की तीव्र उत्सुकता
तो मैं ही सहूँगा
यह हार और दुर्वह असफलता

मेरा तो नाता है
इस पथ से कितने ही जन्मो का
हँसता हूँ रोता हूँ
रुकता सुस्ताता हूँ
उठता हूँ और एक सूनी पगडडी पर
आगे बढ जाता हूँ ।

प्रेम का पाठ

देखता ही रहता हूँ
और धीरे धीरे
सब बनावटें हो जाती हैं बेकार

ऊँचे नीचे मकान
खुले बन्द दरवाजे
छतें और रोशनदान

रह जाती है एक सफेद और सपाट दीवार
तुम लिखते हो प्रेम का पहला पाठ
और मैं पढ़ता हूँ।

दो जिन्दगियाँ

सुख और दुख सिमट कर समा गए हैं
छोटे-छोटे क्षणो मे
लेकिन यह जिन्दगी
और बडी होती चली जाती है

इन सुबहो और शामो का हिसाब
कही नही
बेहिसाब खर्च होते हैं दिन

एक एक लम्हे को मैंने पकडा था
तेज चौकन्नी निगाहो से
उसी वक्त ने बाँट लिया है
बेदर्दी से मुझे
जीनी पड रही हैं
दो जिन्दगियाँ साथ साथ

छूकर चले जाते हैं
दृश्य खुशबुएँ और लोग
खाली नहीं रहते हैं मेरे हाथ
पकड़ खो गई है मेरे हाथों की नहीं
मन की भी शायद

सन सन सन
बजता है कानों में
अजीब सा सूनापन
बावजूद इतनी आवाजों के

कृपण हो गई है
वृत्ति भावों की
उठते नहीं हैं अब अनायास

गिनती के पल छिन हैं
उनके ही कंधों पर
ये लम्बे दिन हैं
बेहिसाब ।

बहुत दिनो के बाद

बहुत दिनो के बाद
ठिठक कर खड़ा हो गया
मन के आगे
बन्द अर्गला खोल
सकुचता अन्दर आया
अपने आगे बेगाना सा

अजब उदासी
चुप्पी बन कर डोल रही थी
जड़ता ने जकड़े थे
जैसे शब्द भाव सब
एक धूल की परत
जमी थी अन्दर बाहर

मैं हतप्रभ सा
शीश झुकाए मौन खड़ा था

कहाँ गया
वह नन्दन कानन
छोटा सा संसार निराला

खुशियों की चिड़ियाँ
जिसमें हरदम गाती थीं
सौरभ भरी हवा के बलखाते पौधों पर
रंग रूप धर आकांक्षाएँ फूल फली थीं

मैं अतीत को पकड़ रहा था
स्मृतियों में
कंधे पर धर हाथ
धूप का
किरणों ने धीरे से झाँका
पवन लिए सौगात
गंध की अन्दर आई
सूरज ने आवाज लगाई
कब घर आएं
साँझ लौटती वेला
दो पल रुक बतियाई

सब आए थे
हँस हँस बोले बतलाए थे

टूटी नहीं उदासी लेकिन
छूटी नहीं धूल की परतें
एक एक कर विदा हो गए
सगी साथी
सूने घर मे मैं अवाक् अब भी बैठा हूँ।

घिर गया है आकाश

घिर गया है अनेक रंगों से आकाश
हवाएँ परिंदों सी टकरा रही हैं
यहाँ से वहाँ
कहाँ जाएँ

खो गए हैं दिशाओं के द्वार
अंधकार से भरा यह साम्राज्य
इसमें झाँकता नहीं है सूर्य
सोती हैं वनस्पतियाँ बारहो मास

खोलूँ कहाँ खोलूँ
इस बोझे की गाँठ
झुकते ही जाते हैं झुके हुए कंधे
किसने दिया है यह असह्य भार

घोर अधकार मे
थोडे से उजाले और थोडी सी शाति की
अकेली आवाज
कितनी निरर्थक है ।

चिड़िया

काले गँदले जल के अन्दर
घुस जाती है
लम्बी गर्दन वाली चिड़िया
ऊँचे उड़ कर
बैठ डाल पर
फिर मनहर स्वर में गाती है।

काँपता है

काँपता है
सूर्य का प्रतिबिम्ब रह रह
डोलते जल मे
एक छाया पथ उभरता
उछलती जाती तरगे
ताल पर गाती हुई सी
पास किसके ?
दूर कुंचित केश वाली
घास काली
देखती स्तब्ध अपलक मौन।

नहीं मैं कहूँगा नहीं

नहीं मैं कहूँगा नहीं
कि पृथ्वी पर से उठ गया है प्रेम
लोग अकेले हो गए हैं

छा जाता है जब अँधियारा
ऊँची से ऊँची फुनगी पर
दूर सुरीली घंटियाँ बजा करती हैं

नहीं मैं नहीं बदलूँगा राह
सँकरी हो पुरानी हो
पर पहचानी है मेरी
भूलूँ या भटकूँ
फिर पाऊँगा उसे

जाना तो वहीं है
उसी झिलमिल करते तारे के पास
दृष्टि मेरी भी लगी है

उत्तरती है हर बार मेरी भी श्रद्धा
मुझे उत्तर मिलते हैं
प्रतिध्वनियों में

नहीं भीख नहीं मांगूंगा
न ऐसी सम्भावनियाँ भाव हीन
लेकर उधारी
मैं कब तक चलाऊँगा
जाऊँगा अपनी उसी राह राह जाऊँगा।